ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 **PP. No.- 123-124**

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e-I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-19, No.-I, Issues-35, YEAR-Jan-Mar. 2025

राजनैतिक अपराध

डॉ० धन्नजय कुमार

असिस्टेन्ट प्रोफेसर– समाजशास्त्र विभाग, रघुवंश प्रसाद सिंह महाविद्यालय, हरनौत, नालंदा (बिहार) भारत

Received-24.02.2025, Revised-31.02.2025, Accepted-07.03.2025 **E-mail : dhananjay803110@gmail.com**

सारांशः राजनीतिक क्रूरता या राजनैतिक दमन, जिसे विधि के नियम की भ्रष्टा भी कह सकते हैं, इतना ही पुरातन है जितना सभ्य समाज फिर भी, आधुनिक संसार में इसका रूप और सीमा नवीन है। प्राचीन काल में दमनकारी अपने अधीनस्थों या प्रजा तक पहुँचने में समर्थ नहीं हो पाता था परन्तु टेलिवीजन, रेडियो और अन्य संचार साधनों के द्वारा वह अपनी वाणी और यहाँ तक कि अपना बिम्ब भी सबों तक पहुँचा सकता है। अपने कार्यक्रमों तथा नीतियों के प्रति लोक प्रतिक्रियाओं का भी प्रामाणिक प्रतिवेदन प्राप्त कर लेता है। वह सारी की सारी जनसंख्या को अपनी ओर मोड़ ले सकता है। आधुनिक तानाशाही को अपार स्वातंत्र्य प्राप्त रहता है और नये–नये उपायों को भी प्रयोग में ले आने का अवसर, वातावरण उसे प्राप्त है। प्रजापीड़न और तकनीकी मिलकर संसार में सर्वथा नया सन्दर्भ प्रस्तुत करते हैं।

कुंजीभूत शब्द– राजनैतिक अपराध, राजनीतिक क्रूरता, राजनैतिक दमन, पुरातन, सभ्य समाज, दमनकारी, लोक प्रतिक्रिया

सर्वराज्यतन्त्रवाद अथवा अधिनायकवाद, जो राजनीतिक दमन का विशिष्ट आधुनिक संस्करण है, वस्तुतः आधुनिक संस्थाओं के कतिपय अभिलक्षण की नाट्यात्मक अभिव्यक्ति मात्र ही है। जनसंख्या की श्रेणियों, युवकों, वृद्धों, कृषकों को स्नेहपूर्ण सम्बन्धों से रिझाने की प्रणाली सामान्य हो गई है।

हमारे युवक, हमारे कृषक आदि ऐसे ही सम्बोधन हैं। लोक समुदाय को मिल–कारखानों, जंगलों, खनिज पदार्थों की श्रेणी में रखा जाता है और इनका कैसा उपयोग किया जाय, यही चिन्ता रहती है और इसके लिए जो प्रयोग किए जाते हैं, उनपर कोई टिप्पणी भी नहीं की जाती है। आधुनिक संस्थाएँ घोर तंत्रवादी होती हैं और राजनीतिक दमनकारी इनका ही उपयोग करते हैं। गणतंत्रात्मक तथा अधिनायकवादी प्रशासन दोनों ऐसा करते हैं। नौकरशाही स्वतः एक राक्षस होती है। जो सत्तारूढ़ रहते हैं, उनके संकेतों पर ही कार्यरत मात्र नहीं हो जाती अपितु निजी हितों तथा स्वार्थी की भी चिन्ता बनाये रहती और सुरक्षित रखती है। व्यक्ति परम स्थितियों या चक्रव्यूह में पड़ गया है।[2]

परम स्थितियों को हम आधुनिक चक्रव्यूह का प्रतीक प्रदान कर सकते हैं। मनुष्य आज चक्रव्यूह से घिर गया है। विपरीत वातावरण में व्यक्ति की क्या दारुण स्थिति हो जाती है, वह आधुनिक चक्रव्यूह के मूल्यांकन से स्पष्ट हो जाता है। इसका कठोरतम अनुभव नाजियों के संकेन्द्रण शिविरों में हुआ था। परम स्थिति का सिद्धांत ऐसे ही एक शिविर के भुक्तभोगी बुभी वेथलहम ने प्रतिपादित किया है। इन शिविरों से जो बच निकले, उनसे पूछने पर उनकी जिस समस्या का रहस्योद्घाटन हुआ, वह यह कि प्रश्न उनके प्राण रक्षण का ही नहीं था बल्कि अपरिवर्तित रह जाने का भी था जो करना ही परम स्थिति का मूल प्रश्न होता है ।3 जो अपने स्वत्व को सुरक्षित रखना चाहता है वह असम्मान के स्थान में मृत्यु को वरण करना अभीष्ट समझता है। जो अपना स्वत्व खो देता है, वह जीवित रहकर भी मृतवत् हो जाता है।[4]

परम स्थितियाँ कैसे उत्पन्न हो जाती हैं? आधुनिक समाज में ऐसी परम स्थितियाँ यदा–कदा, यत्र–तत्र ही नहीं अपितु सतत् एवं सर्वत्र विराजमान रहने लगी हैं और ये सभी अपराधमूलक ही होती हैं। राजनीतिक आतंक का जो उग्रतम रूप संकेन्द्रण शिविरों में दीख पड़ा था, उसका ही रूपान्तर आधुनिक संस्थानों में उत्कट रहने लगा है। जेल, मानसिक आरोग्यशाला, सैनिक बैरेक समुद्र पर जहाज, आवासीय स्कूल, यहाँ तक मठ, सबों में संकेंद्रण शिविर जैसी ही स्थितियाँ रहती हैं। सर्विंग गाफम ने इन्हें सर्वशक्तिमान संस्थाओं की संज्ञा दी है।[5]

किसी सर्वशक्तिमान या 'सकल' संस्था की सफलता इस संस्था के अधीनस्थ व्यक्ति तथा उनपर प्रशासन करने वाले अधिकारियों के सम्बन्ध में निहित होती है। इन आश्रमों में रहनेवाले सदस्यों को कोई नहीं होता है और इनके अधिकारियों को पूर्ण छूट रहती है और इनका प्रशासन निरंकुश रहता है। सदस्यों को परिवर्तित कर देने का पूर्ण अधिकार प्रशासन को प्राप्त रहता है। 'सकल' संस्था इतिहास की आदि व्यवस्था है और समाज में इनके आकार को सदा सुरक्षित कर रखा है। परन्तु आधुनिक संसार में इन्होंने और भी उग्र रूप ले लिया है और प्रायः ऊपर से जो संस्थाएँ श्सकलश नहीं भी प्रतीत होती हैं, वे भी वस्तुतः सकल संस्थाओं से ही संचालित तथा कार्यरत रहती हैं। उनमें प्रकार का नहीं, मात्र मात्रा का अन्तर रहता है। समाज जितना ही राजतंत्रित होता है, उतना ही व्यक्ति बलहीन और संस्थायित होता चला जाता है और संस्था जितनी ही राजतंत्रित होती है, व्यक्ति और अधिकारी के सम्बन्ध उतना ही जटिल और क्रूर होते जाते हैं। सदस्यों का कोई अधिकार नहीं होता है, उनका कोई स्वत्व नहीं रह जाता है।[6] और सकल संस्थाएँ ही परम स्थितियाँ पैदा करती हैं।[7] इन पर समाजीय प्रतिमानों का भी कोई प्रभाव नहीं रहता है। परम स्थितियों के 6 आनुभाविक दृष्टान्त, जिन्हें आधुनिक विचारकों ने परिगणित किया है, ये हैं :

(1) मानसिक आरोग्यशाला,
(2) संकेंद्रण शिविर,
(3) प्रभावहीन राज्य,
(4) सर्वराज्यतंत्रात्मक राज्य,
(5) सामूहिक हत्या और
(6) परमाणु युद्ध

परम स्थितियाँ नैतिकता और वैधता को रौंदती हुई ही नहीं, बल्कि इनके स्थान पर प्रकार्यात्मक बौद्धिकता को प्रतिष्ठित कर दृढ़ हो चुकी है और इनसे आधुनिक समाज आक्रान्त रहने लगा है। चिन्तकों की यह स्थापना है कि सभी प्रकार के राजनीतिक संघटनों या शासनों में इनका प्रभुत्व स्थापित हो गया है और प्रतिमान के रूप में इन्हें प्रतिष्ठित कर दिया गया है और इसलिए, संस्थाओं की विफलता नहीं अपितु सफलता ही आधुनिक समस्याओं का जनन करती है। नौकरशाही और समूहीकरण से उत्पन्न प्रकार्यात्मक बौद्धिकता आज की ज्वलन्त समस्या है।8 दमन, शोषण और स्वत्वहरण के इस आधुनिक मानव, सन्दर्भ से जो अपराध होते हैं, उन्हें हम राजनीतिक या राजनैतिक अपराध कह सकते हैं। अर्थात् प्रशासन ही अपराध करता है, जिसका दायित्व समाज की

अनुरूपी लेखक/ संयुक्त लेखक

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e-I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-19, No.-I, Issues-35, YEAR-Jan-Mar. 2025

असामान्यताओं पर नियंत्रण स्थापित करने का होता है। वह इस प्रयास में कार्य निष्पादन के क्रम में ही निरंकुश, बर्बर और पीड़क हो जाता है।

मानसिक आरोग्यशाला में मानस रोगी को परपीड़क मनोविनोद का शिकार हो जाना पड़ता है और चूँकि यह शाला एकान्त में स्थापित रहती है, इसलिए इसके प्रबन्धक और कार्यकर्त्ता को ऐसा करने में कोई बाधा नहीं पहुँचती है। सामाजिक कर्त्तव्य और दायित्व बोध का इन्हें अपना मानदण्ड होता है। मानस रोगी भी सतत् अपते स्वत्व के हनन की चिन्ता से आकुल रहता है। मेधा की शल्य चिकित्सा, विद्युत् उपचार और कम्पन उत्पन्न करनेवाली औषधियाँ मानस घातक ही होती हैं। रोगियों को यहाँ बलपूर्वक रोक कर रखा जाता है और उन्हें अपनी अभिवृत्तियों को त्याग देने को बाध्य किया जाता है। संकेंद्रण शिविरों में नैतिक प्रहार, अवैधता और प्रकार्यात्मक बौद्धिकता का अखंड प्रभुत्व रहता है। इसका अत्यन्त ही लोकहर्षक रूप नाजियों द्वारा यहूदियों के साथ किए गए व्यवहारों में दीख पड़ा। सामूहिक हत्या तथा मानसिक उत्पीड़न को एक राजनीतिक आदर्श की ओट में मान्यता तक प्रदान दी गई और अत्यन्त नृशंस यातनाएँ भी दी गईं। रक्षकों के प्रति कोई आरोप ठहर नहीं सकता था परन्तु इन शिविरों के सदस्यों के प्रति प्रत्येक आरोप का प्रतिफल दारुण दण्ड था। निष्प्रभ राज्य या प्रभावहीन राज्य भी समस्या प्रदान ही होता है। व्यक्ति को स्वातंत्र्य का सारा अधिकार प्राप्त रहता है परन्तु व्यवहार में वह विधि के परे असामाजिक तत्वों का दास मात्र रहता है। अमेरिका के नीग्रो, अफ्रीका के काले आदमी की स्थिति सुपरिभाषित नियमों के रहते अत्यन्त कष्टप्रद है ।

गौर वर्ण का समुदाय इन सभी नियमों को विफल बना देता है और इन्हें कार्यान्वित नहीं होने देता है। अर्थात् एक विधिवत संगठित राज्य के भीतर ही एक दूसरा राज्य निरंकुश करता है। इस पृष्ठभूमि में नीग्रो किसी भी समय अपमानित, प्रतीत तथा चित्रहिंसा का पात्र हो जा सकता है और न्यायालयों में भी उसे समुचित न्याय प्राप्त होगा, यह संभावना ही विद्यमान नहीं रहती। नीग्रो का एक दूसरा ही वर्ग हो जाता है। दक्षिण अमेरिका में उत्तर अमेरिका से अधिक दारुण स्थिति नीग्रो की होती है। अल्जीरिया के अर्वाचीन कांडों में भी दो विभिन्न निगरानी दलों का कार्यरत रहते पाया गया राज्य की पुलिस तथा गुरिल्ला । यूरोपवासियों ने मुसलिमों के विरुद्ध ओ० ए० एस० संगठित किया और मुसलिमों ने पूर्व से ही एफ० एल० एन० संगठित कर रखा था। और दोनों की आपराधिक क्रियाओं और अभियानों को वैध पुलिस या सैनिक दल या प्रशासन नियन्त्रित करने में विफल ही रहा। चूँकि कोई मात्र भूखबासी था या कोई मात्र मुसलमान, वह आक्रमण का पात्र था और दोनों संगठनों ने खुलकर विनाशलीलाएँ कीं। और जो इन संगठनों के सदस्य थे, वे राजनीति या सामुदायिक अपेक्षाओं के तत्कथित आदर्शों के सन्दर्भ में स्वत्वविहीन थे, उनकी आत्मा विनष्ट हो चुकी थी और यही परम स्थिति थी । सुर्वराज्यतंत्रवादी राज्य दमन तथा तकनीकी के संयोग से गठित होता है। कानून से परे अपने को परे रखनेवाले प्रशासनों का इतिहास पुराना है, परन्तु ऐसे प्रशासनों को स्थिर कर अनिश्चित काल के लिए चलाना उतना ही आधुनिक है जितना विद्युत संचारण तथा बौद्धिक नौकरशाही। सामाजिक पुनर्गठन के नाम पर व्यक्ति के संवैधानिक अधिकारों का विलोपन कर दिया जाता है। जब साामजिक लक्ष्य सर्वप्रभुता से सम्पन्न हो जाता है, व्यक्तित्व के इस लक्ष्य की पूर्ति का साधन मात्र बना दिया जाता है। जिसका सैद्धांतिक नवीनीकरण नहीं हो जाता है, उन्हें विफलता के दोष का शिकार होना पड़ता है । राजनीतिक अविश्वसनीयता के आधार पर इन्हें आसामाजिक यहाँ तक कि आपराधिक भी घोषित कर दिया जाता है और इन्हें फालतू करार कर समाप्त भी कर दिया जाता है। ऐसे प्रशासनों की पुलिस को कोई नैतिक तथा विधिक रोक भी नहीं होती है और उपर्युक्त अपराधियों या असामाजिक व्यक्तियों को विनष्ट करने की छूट रहती है। ऐसी पुलिस परमगुप्त भी रहती है । परमगुप्त पुलिस की संरचना और प्रकार्यात्मकता और भी कठोर होती है। और जो अपराधी या असामाजिक व्यक्ति घोषित हो जाते हैं, वे परम स्थिति में भुक्तभोगी हो जाते हैं। और जब इस पुलिस आतंक को व्यापक कर दिया जाता है, तब भी सभी सामाजिक व्यक्ति परम स्थिति में पड़ जाते है। राज्य प्रशासन को कार्य करने की छूट तथा सभी प्रकार के विशेषाधिकार प्राप्त हो जाते हैं। सामूहिक हत्या या जेनोसाइड साधारण नर–वध से भिन्न होता है। जर्मन ऐडोल्फ आइकमन् को किसी भी नैतिकता या वैधता का प्रश्न नहीं था। लक्ष्य महत्त्वपूर्ण था, यूरोप से सभी यहूदियों की परिसमाप्ति साध्य भी और इसकी पूर्ति के लिए जो कुछ भी किया जाता था, उसे सम्पन्न करनेवाले व्यक्ति के समक्ष नैतिक या वैध कार्य निष्पादनों का प्रश्न नहीं था, वह मात्र एक यंत्र था, एक निष्प्राण व्यक्ति था । आणविक युद्ध या किसी अन्य युद्ध में सैनिक भी परम स्थिति में ही रहता है और कोई व्यक्ति इसलिए गोली का शिकार बनाया जाता है चूंकि वह शत्रु मात्र है और जो प्रहार करता है उसके लिए औचित्य अथवा अनौचित्य का कोई प्रश्न नहीं रहता है। आणविक में योद्धा और जो योद्धा नहीं है वे भी समानतः विनाश के क्षेत्र में आ जाते हैं ।[9] पुलिस द्वारा भी नृशंसताएँ बरती जाती हैं। विविध आयोगों ने इन पर समुचित प्रकाश डाला है। अर्थात् पुलिस भी हिंसा करती है। दोष स्वीकृति, न्याय विधान के परे दण्ड देने और आदि के उद्देश्य से पुलिस हिंसाएँ करती हैं और सभी देशों में इसके दृष्टान्त पाये गये हैं। अर्थात् राजनीतिक अपराध से उस अपराध का अभिप्राय है जो राजनीतिक व्यूह रचकर तथा एक प्रकार का बौद्धिक कलेवर प्राप्त कर व्यक्ति के स्वातंत्र्य, स्वाभाविक स्वत्व बोध का हनन करता है और जो इस व्यूह को मान्यता नहीं प्रदान करता है, उसे विभिन्न शारीरिक और मानसिक यातनाएँ प्रदान कर विनष्ट करता है। हिंसा का यह रूप अत्यन्त भयावह होता है और राजनैतिक प्रहार तथा विविध दबाव सामान्य अपराध की भाँति ही सामुदायिक जीवन को अव्यवस्थित, विघटित तथा त्रस्त कर देते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. वर्ड राजेनर्ग, जर्वर तथा हांटन–संपादकगण मास सोशाइटी इन क्राइसिस, पृ० 157.
2. वही, पृष्ठ 158.
3. वही, पृ०159.
4. वही, पृ० 159.
5. वही, पृष्ठ 159.
6. वही, पृ० 160.
7. वही, पृ० 161.
8. वही, पृष्ठ 166–168.
9. वही, पृष्ठ 142–167.

*****